LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 4: ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

2/4 (श्लोक 10-18), शनिवार, 04 नवंबर 2023

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/4ByAB61vMrY

भगवद् भक्ति के रूप और कर्म, अकर्म व विकर्म

भगवान श्रीकृष्ण, गुरु वन्दना, माँ सरस्वती, महर्षि वेदव्यास, ज्ञानेश्वर महाराज, गुरु गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के श्रीचरणों में वन्दन और दीप प्रज्वलन के साथ आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

हम सभी भगवद्गीता के अनुगामी हैं। गुरुदेव ने जो पथ हमारे लिए प्रदर्शित किया है, उस पथ पर हम चलने का प्रयास कर रहे हैं। भगवद्गीता प्रत्यक्ष समराङ्गण में किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्त्तव्य पथ पर लाने के लिए भगवान के मुखारबिन्द से प्रकट हुई एक शाश्वत ज्ञान की धारा है।

भगवद्गीता में कर्त्तव्य का अर्थ है धर्म। धर्म शब्द अर्थात-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।

से भगवद्गीता का प्रारम्भ होता है और **"मम"** शब्द अर्थात-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

पर समापन होता है।

मम धर्म अर्थात मेरा कर्त्तव्य क्या है? जब हम मेरा कर्त्तव्य एक जीव के परिप्रेक्ष्य में लेते हैं तो इससे अभिप्राय यह है कि हम इस धरा पर आकर अनेक कर्म करते हैं, चाहे वह पुत्रधर्म हो, पिताधर्म हो, माताधर्म हो, राष्ट्रधर्म हो आदि-आदि। ये सभी धर्म यानि कर्त्तव्य हमें हमारे जन्म के साथ सहज रूप में प्राप्त होते हैं। धर्म हमारे जीवन की नींव है। अपने कर्त्तव्यों को करते हुए आनन्दमय जीवन कैसे जिया जाता है, यह भगवद्गीता हमें बताती है।

भगवान बताते हैं कि, हे अर्जुन! तुम्हारे और मेरे अनेक जन्म हुए हैं। तुम्हें तो याद नहीं हैं पर मुझे याद हैं, इसलिए भगवद्गीता का

एक परम उद्देश्य यह है कि जो सब कुछ जानता है, उसे जान लो। उसके साथ अपना नित्य सम्बन्ध प्रतिस्थापित कर दो। अपने जीवन की बागडोर उसके हाथ में सौंप दो। अर्जुन ने जैसे उन्हें अपना सारथी बनाया, हम भी भगवान को अपना सारथी बना सकते हैं, इसलिए भगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति है। भगवान चाहे हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित न हों, पर वाङ्मय रूप में, साहित्य के रूप में भगवान भगवद्गीता में बसते हैं।

भगवद्गीता हमारे विवेक को जाग्रत करती है। कौन सा कर्त्तव्य महत्त्वपूर्ण है और कौन सा कर्त्तव्य कब करना है, इस द्वन्द्व की समाप्ति भगवद्गीता करती है। अन्ततोगत्वा हर जीव इस धरा पर अपने स्वरूप की पहचान करने के लिए आया है ।

भगवद्गीता में **ज्ञानकर्मसंन्यासयोग** के माध्यम से भगवान इन रहस्यों को अर्जुन के समक्ष खोल रहे हैं क्योंकि अर्जुन अनघ हैं, निष्पाप हैं, भगवान पर उनकी पूरी निष्ठा और श्रद्धा है, भगवान के वचनों पर उनका पूरा विश्वास है।

भगवान निर्गुण निराकार हैं पर भक्तों के लिए वे साकार रूप में अवतरित होते हैं इसलिए भगवान का साकार स्वरूप भी उतना ही सत्य है जितना निराकार स्वरूप। सन्त गुलाबराव जी महाराज ने इसका प्रतिपादन करते हुए कहा कि हमारी साकार रूप में भी उतनी ही निष्ठा होनी चाहिए जितनी निराकार में।

भगवद्गीता हमें बारहवें अध्याय में यह बताती है। निर्गुण तक पहुँचने के लिए साकार की आराधना एक स्टेपिङ्ग स्टोन नहीं है। निराकार और साकार उसी परमात्मा के दो रूप हैं। जिसको जैसा भाता है, उसे वह उसी रूप में गोचर हो जाते हैं।

भगवान बताते हैं कि क्यों मुझे इस पृथ्वी पर आना पड़ता है। वे कहते हैं -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

अर्थात् जब-जब धर्म की हानि और अधर्म बढ़ता है तब-तब धर्म की स्थापना, दुष्कृत्यों का नाश करने और सज्जनों की रक्षा करने के लिए उन्हें इस पृथ्वी पर आना पड़ता है। कलियुग में सज्जनों की शक्ति के माध्यम से ही परमात्मा प्रकट होंगे। जब सज्जनों की शक्ति का संवर्धन होगा, तभी दुर्जनों का नाश सम्भव है। ज्ञानेश्वर महाराज जी ने कहा है कि जिस प्रकार भगवान का राम रूप में, कृष्ण रूप में अवतरण होता है, वैसे ही हमारे अन्तरङ्ग में, हमारे अविवेक को दूर करने के लिए उस परमात्मा का अवतरण होता है, वह जाग्रत हो जाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं :

मी अविवेकाची काजळी, फेडूनी विवेकदीप उजळीं। तैं योगियां पाहे दिवाळी, निरंतर।।
तैं पापाचा अचळु फिटे, पुण्याची पहाट फुटे। जैं मूर्ति माझी प्रगटे, पंडुकुमरा।।

विवेक का दीपक मैं स्वयं जलाता हूँ और अविवेक के कारण, अधर्म के कारण दीपक पर जो कालिमा आ जाती है, उसे मैं स्वयं दूर करता हूँ और जब मैं प्रकट होता हूँ तो पाप नष्ट होने लगते हैं। हमारे अन्दर परमात्मा बस जाते हैं और वह हमें सही मार्ग पर ले जाएँगे। जब परमात्मा सगुण साकार रूप में धरा पर अवतरित होते हैं तो पुण्य बढ़ने लगते हैं। इसलिए भगवान भगवद्गीता के अन्तिम अध्याय में बताते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्ष यि मा शुचः।।

हे अर्जुन तुम अपने समस्त धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें पापमुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो। भगवान वेदव्यास कहते हैं कि परोपकार ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है।

परमात्मा को समग्र रूप से जानना कठिन है। हम उन्हें आंशिक रूप में जानते हैं। भगवान कहते हैं जिसने उन्हें समग्रता से जान लिया, तत्त्व से जान लिया, उन्हें दुबारा देह लेकर नहीं आना पड़ता। भगवान की लीलाओं को वही जान पाता है, जो उन्हें तत्त्व से जानता है।

एक प्रसङ्ग आता है जिसमें चार अन्धे व्यक्ति एक हाथी का वर्णन करते हैं। जिसके हाथ में हाथी का पाँव आता है, वह कहता है, हाथी खम्भे के समान है, जिसके हाथ में पूँछ आती है, वह कहता है, हाथी तो सर्प के समान है, जिसके हाथ में हाथी का पेट आता है, वह कहता है, हाथी तो नगाड़े के समान है और इस प्रकार जिसके हाथ में जो आता है, वह अपने स्पर्श के अनुसार उस हाथी को आंशिक रूप से जानेगा और उसका आंशिक ही वर्णन करेगा, लेकिन दृष्टिवान व्यक्ति उसे समग्र रूप में देखेगा और कहेगा कि ये तो हाथी के अवयव हैं और इन सबको मिलाकर यह हाथी बना हुआ है। इसी प्रकार परमात्मा को समग्रता से जिसने जान लिया फिर वह परमात्मा को ही प्राप्त हो जाता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया ममुपाश्रिता:।
बहवो ज्ञानतपस पूता मद्भावमागता:।।

हमारे जो भी भौतिक संसाधन हैं, उनके प्रति हमारी आसक्ति होती है। वह वस्तु हमसे जब कोई छीनता है तो हमें क्रोध आता है। साथ ही यह भय भी होता है कि कोई यह संसाधन मुझसे छीन न ले, पर जिसने परमात्मा के साथ अपना मन एकाकार कर लिया, वह इन सबसे मुक्त हो जाता है। वह परमात्मा के गुण ग्रहण कर लेता है। परमात्मा का स्वरूप है - सत् चित् आनन्द यानि अनन्त जीवन, समग्र ज्ञान और असीम सुख, जो कभी खण्डित नहीं होता, जो किसी पर आश्रित नहीं होता।

ज्ञान से जिन लोगों ने अपने जीवन को पावन कर लिया, ऐसे सभी लोग देह में रहते हुए भगवान के स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। हमारे सन्त, महात्मा उस अवस्था तक पहुँच जाते हैं जिनका वर्णन हमारे शास्त्रों और ग्रन्थों में मिलता है। भगवान अर्जुन से कहते हैं कि तुम भी उस अवस्था तक पहुँच सकते हो।

4.10, 4.11

वीतरागभयक्रोधा, मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा, पूता मद्भावमागताः॥10॥
ये यथा मां(म्) प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः(फ्) पार्थ सर्वशः॥11॥

राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित, मुझ में तल्लीन, मेरे (ही) आश्रित (तथा) ज्ञान रूप तप से पवित्र हुए बहुत से (भक्त) मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।
पृथानन्दन ! जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ; (क्योंकि) सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग का अनुकरण करते हैं।

विवेचन : भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! जो मेरी अर्चना करता है, मुझे भजता है, मेरी शरण में आता है, मैं भी उनकी उसी प्रकार से अर्चना करता हूँ। मुझे भी उनके बिना रहा नहीं जाता। सन्त महात्मा कहते हैं कि मैं जहाँ जाता हूँ, आप मेरे साथ बसते हो। परमात्मा की अलौकिक शक्ति साथ बसने लगती है। वह हमारा मार्ग प्रशस्त करने लगती है। जो मनुष्य सभी प्रकार से मुझ पर निष्ठा रखते हैं, वे परमात्मा के मार्ग का ही अनुसरण करते हैं।

तीन प्रकार की भक्ति होती है-

एक- जो भक्त भगवान की भक्ति करते हैं। रामदास स्वामी जी ने भक्त की व्याख्या इस प्रकार की है। वे कहते हैं जो विभक्त नहीं रहना चाहता, जो अपने सांसारिक कर्मों को करते हुए निरन्तर परमात्मा का जप करता रहता है, उनको याद करता रहता है।

दूसरी भक्ति है- शिष्य-गुरु की भक्ति, जिसमें शिष्य गुरु की भक्ति करते हैं। जितना शिष्य गुरु की भक्ति करेगा, गुरु उतने ही उसके साथ बसेंगे और उनके उतने ही गुण शिष्य में भी प्रवाहित होने लगेंगे।

तीसरी है- भगवान जो भक्त की भक्ति करते हैं, अर्थात मैं भगवान को इतना याद करूँ या उनकी इतनी भक्ति करूँ कि भगवान को भी भक्त की याद आने लगे।

भक्ति के अलग-अलग रूप हैं-

वात्सल्य भक्ति जैसे कौशल्या और यशोदा माता की भक्ति, **दास्य भक्ति** जैसे हनुमान जी की भक्ति, **सख्य भक्ति** जैसे अर्जुन की भक्ति, **अंश भक्ति** जैसे हम भगवान के अंश रूप में उनकी भक्ति करते हैं, **लालन भक्ति** जो ठाकुर रामकृष्ण देव ने की। उन्होंने भगवान को अपनी माँ जगदम्बा कहा और स्वयं को उनका बालक माना। **माधुर्य भक्ति** सर्वोपरि भक्ति है जिसका प्रतिपादन सन्त श्री गुलबराव जी महाराज ने किया। माधुर्य भक्ति में भक्त और भगवान का सम्बन्ध पति-पत्नी का होता है और यह भक्ति इसलिए सर्वोपरि है कि, जैसे पति-पत्नी में कोई भेद नहीं रह जाता, वैसे ही भक्त और भगवान में भी कोई भेद नहीं रह जाता और इसमें ज्ञान के सभी द्वार खुल जाते हैं। गोपियाँ इस माधुर्य भक्ति के लिए कात्यानी व्रत रखती थी ताकि उन्हें भगवान पति के रूप में प्राप्त हो जाएँ और उनको वह समग्र ज्ञान प्राप्त हो जाय।

भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! जो मेरी जिस प्रकार की भक्ति करते हैं, मैं उनकी उसी भक्ति का पूरक बन जाता हूँ, अर्थात् जो लालन भक्ति कर रहे हैं, मैं उनके लिए पिता बन जाता हूँ, जो वात्सल्य भक्ति कर रहे हैं, मैं उनके लिए पुत्र बन जाता हूँ, जो दास्य भक्ति कर रहे हैं, मैं उनके लिए उनका स्वामी बन जाता हूँ, जो सख्य भक्ति कर रहे हैं, मैं उनका सखा बन जाता हूँ, जो माधुर्य भक्ति कर रहे हैं मैं उनके लिए उनका पति बन जाता हूँ।

भगवान आगे चलकर कहते हैं कि सभी मेरी अर्चना नहीं करते। कुछ अन्य अधिष्ठात्री देवताओं की भी अर्चना करते हैं, जैसे वरुण, गणपति, लक्ष्मी, सरस्वती, पवन, दुर्गा माता आदि देवताओं की आराधना। भगवान कहते हैं कि इन सभी देवताओं की आराधना भी करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों से इनकी सिद्धि प्राप्त करता है।

4.12

काङ्क्षन्तः(ख्) कर्मणां(म्) सिद्धिं(म्), यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं(म्) हि मानुषे लोके, सिद्धिर्भवति कर्मजा॥12॥

कर्मों की सिद्धि (फल) चाहने वाले (मनुष्य) देवताओं की उपासना किया करते हैं; क्योंकि इस मनुष्यलोक में कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि जल्दी मिल जाती है।

विवेचन : कर्मों की सिद्धि चाहने वाले मनुष्य अन्य अन्य देवताओं की आराधना करते हैं क्योंकि इस मनुष्यलोक में कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि उन्हें जल्दी मिल जाती है।

भगवान सातवें अध्याय में कहते हैं

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ। कर्म सिद्धि से तात्पर्य यह है कि जब हम एक ही कर्म बार-बार करते हैं तो वह कर्म सिद्ध हो जाता है, जैसे एक डॉक्टर ऑपरेशन करते-करते धीरे-धीरे उसमें प्रवीण हो जाता है, वैसे ही हम एक ही कर्म बार-बार करने से उसमें प्रवीण हो जाते हैं।

4.13

चातुर्वर्ण्यं(म्) मया सृष्टं(ङ्), गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां(म्), विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥13॥

मेरे द्वारा गुणों और कर्मों के विभाग पूर्वक चारों वर्णों की रचना की गयी है। उस (सृष्टि-रचना आदि) का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को (तू) अकर्ता जान। (कारण कि) कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है, (इसलिये) मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से जान लेता है, वह (भी) कर्मों से नहीं बँधता। (4.13-4.14)

विवेचन : भगवान कहते हैं कि गुण कर्म विभागों के अनुसार मैंने चार वर्णों की रचना की। मैं अविनाशी परमेश्वर इन वर्णों का कर्त्ता होते हुए भी इनका कर्त्ता नहीं हूँ, यह बात तुम जान लो। मैं कर्त्ता क्यों हूँ और कर्त्ता होते हुए भी इनका अकर्त्ता हूँ, यह बात भी तुम समझ लो।

अगर इन चार वर्णों को हम व्यापक रूप में समझें तो ये हैं - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शूद्र से तात्पर्य क्षुद्र यानि निकृष्ट नहीं है। शूद्र से तात्पर्य सेवाभावी, तन्त्रोपजीवी, कलोपजीवी लोगों से हैं अर्थात जो श्रम शक्ति से जुड़े हैं। ब्राह्मण अर्थात ज्ञान शक्ति, क्षत्रिय अर्थात बाहुबल, शौर्य शक्ति, वैश्य अर्थात वित्त शक्ति और शूद्र अर्थात श्रम शक्ति। भगवान कहते हैं कि सृष्टि को चलाने के लिए चारों शक्तियाँ आवश्यक हैं और सृष्टि निर्माण के साथ इनका भी अपने आप निर्माण हो गया।

जैसे एक राष्ट्र के सुचारु सञ्चालन के लिए ज्ञान शक्ति अर्थात नई-नई खोज, सीमाओं की रक्षा के लिए शौर्य शक्ति के रूप में सैन्य बल, आर्थिक समृद्धि के लिए वित्त शक्ति और विभिन्न कार्यों को करने के लिए श्रम शक्ति आवश्यक होती है। इनमें से किसी भी एक के भी न होने से वह राष्ट्र, वह तन्त्र सुचारु रूप से नहीं चल सकता। वैसे ही संसार के संचालन के लिए ये चारों शक्तियाँ रहेंगी, इसलिए मैं इनका कर्ता हूँ। भगवान ने किसी भी वर्ण को ऊँचा-नीचा नहीं कहा।

ये सभी वर्ण सृष्टि निर्माण के साथ-साथ स्वयं निर्मित हो जाते हैं। जैसे किसी न्यायाधीश ने किसी व्यक्ति को फाँसी की सजा सुनाई, बधिक (ज़ल्लाद) ने उसे फाँसी दी। उस व्यक्ति को न तो न्यायाधीश ने मारा, न न्यायपालिका ने मारा और न ही बधिक(ज़ल्लाद) ने मारा बल्कि उसके कर्मों ने उसे मारा, इसलिए भगवान यह कहना चाहते हैं कि मैं इन वर्णों का कर्ता होते हुए भी अकर्ता हूँ, अर्थात जैसे व्यक्ति के गुण होंगे, कर्म होंगे, वह उन्ही का अनुसरण करेगा और उसी प्रकार के कार्य करेगा।

भगवान यहाँ जन्म से वर्ण की बात नहीं करते, पर जन्म से भी हमें कुछ गुण (जीन्स) प्राप्त होते हैं। जैसे एक क्षत्रिय के घर में जन्म लेने वाला बालक जन्म से ही अपने परिवार में शौर्य और पराक्रम देखता है तो वह उन्ही गुण धर्मों को अपना लेता है इसलिए मनुष्य के गुण सूत्रों पर जन्म का भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार हमें कुछ गुण धर्म आनुवंशिक रूप से प्राप्त होते हैं और कुछ वातावरण से और इन्हीं के अनुसार हमारा स्वाभाविक कर्म होता है तथा ऐसे ही सारे वर्णों की रचना होती है, यह बात हम समझें।

4.14

न मां(ङ्) कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां(म्) योऽभिजानाति, कर्मभिर्न स बध्यते॥14॥

विवेचन : भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! मैं सब जानता हूँ। मुझे किसी कर्मफल में आसक्ति नहीं है कि मैं यह ही कर्म करूँगा,

इसलिए कर्म मुझे लिप्त नहीं करते। जो लोग इस प्रकार से मेरी लीलाओं और मेरे कर्मों को जानते हैं और जिन्हें यह पता है कि मैं किसलिये इस धरा पर आया हूँ, उन्हें कर्म बन्धित नहीं करते। तुमने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है, इसलिए युद्ध करना तुम्हारा कर्म है और युद्ध से विमुख न होना ही तुम्हारा धर्म है।

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि-

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

यह बात तो अर्जुन के लिए है पर हमारे लिए भी यह है कि हम अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म करें, अपने को पहचानते हुए अपने कर्म करें, मैं क्यों यहाँ आया हूँ, यह सोचते हुए अपने कर्म करें।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं :

हें मजचिस्तव जाहलें । परी म्यां नाहीं केलें ।
ऐसें जेणें जाणितलें । तो सुटला गा ॥८१॥

ये सारी चातुर वर्ण की रचना अपने आप हुई है। यह रचना समस्त सृष्टि के लिए आवश्यक है पर इसे मैंने नहीं बनाया, यह सृष्टि के साथ अपने आप निर्मित है। जिसने यह बात समझ ली, वह भी कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए संसार का स्वरूप जानना, परमात्मा का स्वरूप जानना, परमात्मा अवतार लेकर आते हैं और कैसे कर्म करते हैं, यह जानना।

भगवान तीसरे अध्याय में कहते हैं, '**उदासीन वदासीनो',** अर्थात जिनके अधीन पूरा संसार है, उन्हें कर्म करने की क्या जरूरत है, पर भगवान इस सबके उपरान्त मनुष्य अवतार में अपने कर्म नहीं त्यागते। चाहे वह गौ चराने का हो, चाहे वह वैश्य का हो, चाहे वह क्षत्रिय कर्म हो, चाहे सन्दीपनी गुरु के पास जाकर ज्ञान अर्जन करने का कर्म हो, जब-जब कोई भी कर्म उन्हें सौंपा गया, उन्होंने उस कर्म में अपना शत प्रतिशत मन लगाकर उसे पूरा किया।

हमें कर्म बन्धन लगता है क्योंकि हम कर्म के परिणामों से डरते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं :

तैसा कर्तृत्वाचा मदु। आणि कर्मफळाचा आस्वादु।
या दोहींचें नांव बंधु। कर्माचा कीं।।

मैंने यह किया और मैं यही कर्म करूँगा, यह कर्म का बन्धन है। जैसे मैं विवेचन ही करूँ, यह कर्म का बन्धन ही है, इसलिये कर्मबन्धन छूटने के बाद पता चलता है कि कर्म का प्रभाव कैसा होता है, हम किन कर्मों में आसक्त थे, किनमें लिप्त थे। धीरे-धीरे हमें पता चलता है कि हम कैसे कर्म में भी आसक्त रहते हैं और फल में भी आसक्त रहते हैं। भगवद्गीता जब हमें कर्मबन्धन से छूटने का ज्ञान देती है तो हम धीरे-धीरे इन कर्म बन्धनों से मुक्त होते जाते हैं।

एवं(ञ्) ज्ञात्वा कृतं(ङ्) कर्म, पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं(म्), पूर्वैः(फ्) पूर्वतरं(ङ्) कृतम्॥15॥

पूर्वकाल के मुमुक्षुओं ने भी इस प्रकार जानकर कर्म किये हैं, इसलिये तू (भी) पूर्वजों के द्वारा सदा से किये जाने वाले कर्मों को ही (उन्हीं की तरह) कर।

विवेचन : भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम उनके पदचिन्हों पर चलो जो लोग कर्म मार्ग में अटके नहीं और कर्म बन्धन में नहीं पड़ते या तुम उनके मार्ग पर चलो जिन्होंने साधना करते हुए अपने अन्तिम गन्तव्य को प्राप्त किया।

महाभारत में कहते हैं "वृद्धोप सेवा"। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो वृद्ध हो गए हैं, उनकी सेवा बल्कि जो उस ज्ञान में वृद्ध हो गए, उनकी सेवा करना या उनके मार्ग का अनुसरण करना और यह जानकार जिनमें मुक्ति पाने की इच्छा जगी हो, ऐसे मुमुक्षुओं का अनुसरण करना।

चार प्रकार के जीव होते हैं -**विषयी, विषयबद्ध** - विषयों के पीछे भागने वाले, **मुमुक्षु** - जिनके अन्दर मुक्ति पाने की इच्छा जागृत हो गई है और **अन्तिम मुक्त** - जो मुक्त हो गए, इसलिए हे अर्जुन! तुम उन मुमुक्षुओं के जीवन का अनुसरण करो जिन्होंने कर्म करते हुए मुक्ति प्राप्त की। जैसे मुझे जो प्राप्त करना है, उसके लिए पहले के लोगों ने क्या किया, वह मैं उन लोगों से पूछूँगा, जैसे फैक्ट्री लगाने के लिए मुझे उस व्यक्ति से पूरी प्रक्रिया पूछनी पड़ेगी जिसने पहले कभी फैक्ट्री लगाई हो। भगवान यहाँ पर वही बात कह रहे हैं कि जिन्होंने पहले वे कर्म कर लिए हैं और उन्हें सिद्ध कर लिया है, उनको पूछो। उनके मार्ग का अनुसरण करो। तुम युद्ध कर्म छोड़ना चाहते हो पर तुम कभी कर्ममुक्त नहीं हो सकते। तुम रजोगुणी हो।

4.16

किं(ङ्) कर्म किमकर्मेति, कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥16॥

कर्म क्या है (और) अकर्म क्या है - इस प्रकार इस विषय में विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। (अतः) वह कर्म तत्त्व (मैं) तुम्हें भली भाँति कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ (संसार-बन्धन) से मुक्त हो जायगा।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! कर्म क्या है, अकर्म क्या है और कर्म न करना क्या है।

भगवान तीसरे अध्याय में कहते हैं-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।

अकर्मण्य व्यक्ति की शरीर यात्रा भी नहीं चलेगी। हमारा सुनना भी कर्म है, देखना भी कर्म है, बैठना भी कर्म है। कर्म तो निरन्तर चलते रहते हैं। अकर्मण्य होना सम्भव ही नहीं है क्योंकि शरीर कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है, इसलिए भगवान कहते हैं कि अकर्म क्या है, यह समझ लो।

भगवान कहते हैं कि कौन सा कर्म करना है, कौन सा छोड़ना है, यह निर्णय करने में विद्वान लोग भी भ्रमित हो जाते हैं, विमूढ़ हो जाते हैं, इसलिए जो कर्म तुम्हारे लिए शुभ है जिसको जानकर तुम अशुभ से मुक्त हो जाओगे, वह कर्म मैं तुम्हें भली- भाँति बताऊँगा। यह कर्म छूट जाने की बात है, कर्म छोड़ने की बात नहीं है, अर्थात् कर्म करते हुए धीरे-धीरे **नैष्कर्म्य** हो जाना। इसलिये इस अध्याय का नाम है **"ज्ञानकर्मसंन्यासयोग"** अर्थात ज्ञान के प्रकाश में कर्म को देखते हुए कर्म का विलोप हो जाना।

4.17

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं(म्), बोद्धव्यं(ञ्) च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं(ङ्), गहना कर्मणो गतिः॥17॥

कर्मों का (तत्त्व) भी जानना चाहिये और अकर्म का (तत्त्व भी) जानना चाहिये तथा विकर्म का (तत्त्व भी) जानना चाहिये; क्योंकि कर्म की गति गहन है अर्थात् समझने में बड़ी कठिन है।

विवेचन : अकर्म शब्द का अर्थ है कर्म करते हुए भी उस कर्म का कोई परिणाम न होना, वह किया हुआ न लगना। कर्म करते हुए हमें कष्ट होते हैं और जब हम उसमें मन लगाते हुए कोई भी कर्म करते हैं तो उसका बोझ हम पर पड़ता है। कर्मफल अनुकूल आएगा या प्रतिकूल, इसका भी बोझ हम पर पड़ता है। इन सारे परिणामों से अन्तरङ्ग को मुक्त करना यानि कर्म करते हुए भी वह कर्म किया ही नहीं, उसका कोई लेप अन्तःकरण पर न लगना, इसे कहते हैं अकर्म।

कवि ने कहा है :

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नांहि।

कहूँ कही जो मैं किया, तुम ही थे मुझ मांहि ॥

कवि कहते हैं कि हे भगवन! जो कुछ किया, वह आपने किया, मैंने कुछ नहीं किया क्योंकि तुम ही मेरे अन्दर बसे हुए हो।

भगवान कहते हैं कि तुम अब विकर्म भी जान लो क्योंकि कर्म की गति अति गहन है। यह गहन गति ही कर्म का सिद्धान्त है। विकर्म का अर्थ दो प्रकार से लगाया गया है। ज्ञानेश्वर महाराज जी इसे "विशेष कर्म" कहते हैं और इसका दूसरा अर्थ है "विपरीत कर्म"।

विनोबा भावे जी ने कहा - कर्म को अकर्म में परिवर्तित करते हुए कर्म में अपना विशेष रूप से ध्यान लगाना और धीरे-धीरे उसमें विशेषज्ञता अर्जित कर लेना! इसके बाद वह कर्म अकर्म जैसा लगने लगता है, वह विकर्म कहलाएगा। जैसे हम पहले ड्राइविङ्ग सीखते हैं तो हम, गियर कब लगाना है, ब्रेक कब लगाना है, क्लच कब दबाना है, एक्सिलेटर कब दबाना है आदि यह सब कार्य बड़े ध्यान से करते हैं पर धीरे-धीरे जब हम इसमें निपुण हो जाते हैं तो ये सभी कार्य हम कई अन्य कार्य करते हुए बड़े आसानी से कर लेते हैं। कर्म करने पर भी कर्म किया हुआ न लगना, यही अकर्म है।

4.18

कर्मण्यकर्म यः(फ्) पश्येद्, अकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु, स युक्तः(ख्) कृत्स्नकर्मकृत्॥18॥

जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म (देखता है), वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है, वह योगी है (और) सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला (कृतकृत्य) है।

विवेचन **:** भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! अब ज्ञानी लोगों का कर्म भी तुम समझ लो। ज्ञानी पुरुषों के कारण अनेक कर्म होते हैं। वे अपने कर्म में कर्म हुआ ही नहीं, यह देखते हैं। वे कर्म में अकर्म देखते हैं।

सन्त तुकाराम महाराज कहते हैं : अरे एक कोकिला होती है जो मधुर स्वर में गाती है, उसके कण्ठ में यह मधुर स्वर किसने दिया, यह वाणी की शक्ति किसने दी। यह परमात्मा की देन है। यह कोई भी मर कर भी नहीं चुका सकता। यह तो परमात्मा को शरणागत होने से ही चुकता होगा, लेकिन अकर्म में कर्म देखना यह बहुत कठिन है। इसे कहते हैं कर्म करते हुए भी कुछ नहीं किया और कर्म न करते हुए भी सब कुछ किया।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-

आणि उदोअस्ताचेनि प्रमाणें । जैसें न चलतां सूर्याचें चालणें ।
तैसें नैष्कर्म्यत्व जाणे । कर्मींचि असतां ।।९९।।

वे कहते हैं, सूर्य भगवान उदित नहीं होते। वे तो वहीं पर स्थित हैं पर हमें लगता है कि वे उदित हो रहे हैं या अस्त हो रहे हैं। यह सारा कर्म पृथ्वी के सूर्य भगवान की परिक्रमा करने से घटता है। सूर्य भगवान तो अपनी जगह पर स्थिर हैं, अपने स्थान पर हर समय उदित ही हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने सात सौ साल पहले इस अध्याय का निरूपण करते हुए यह बात कही थी जबकि बाइबिल में लिखा था सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है और जब गैलीलियो ने चार सौ साल पहले यह लिखा कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगा रही है तो उन्हें जेल में डाल दिया गया। उन्हें कहा गया कि वे यह लिखकर दें कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगा रहा है तो उन्हें जेल से छोड़ दिया जाएगा। इस पर उन्होंने कहा "उनके लिखने से क्या होगा। जो सत्य है, वह बदल तो नहीं सकता।"

हमारे पूर्व राष्ट्रपति राधाकृष्ण जी रमण ऋषि के पास गए। उनके पास जाकर उन्हें जो परम शान्ति प्राप्त हुई तो उन्होंने कहा **"He is doing nothing but he is doing greatest things"** वे कुछ नहीं करते पर बहुत बड़ा कार्य करते हैं। सूर्य भगवान कुछ नहीं करते पर उनके प्रकाश में सृष्टि कर्मरत होती है।

किसी ऑफिस में बॉस के आने के बाद सभी लोग अपने कार्यों में लग जाते हैं। बॉस ने कुछ नहीं किया पर उनके कारण कर्म हो रहा है। ऐसे ही पिता के घर में आते ही सारे बच्चे पढ़ाई में लग जाते हैं। पिताजी ने कुछ नहीं किया पर उनके आने से बच्चों ने पढ़ाई शुरू कर दी। इसे ही कहते हैं अकर्म में कर्म देखना।

ज्ञानेश्वर महाराज के श्रीचरणों में आज के विवेचन को समर्पित करने के साथ विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र प्रारम्भ हुआ।

विचार मन्थन(प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता : मयूरी दीदी
प्रश्न : आपने अपेक्षा नहीं रखना कहा है, पर बिना अपेक्षा काम कैसे हो सकता है।
उत्तर : निरपेक्ष होकर कर्त्तव्य कर्म करना चाहिए। अपेक्षा रख कर कार्य करने से पूर्ण समर्पण से कार्य नहीं हो सकेगा।

प्रश्नकर्ता :शीला दीदी
प्रश्न: सत्रहवें श्लोक में दिया कर्म, विकर्म फिर से समझा दीजिए।
उत्तर: जो हम करते हैं वह कर्म है। न करने योग्य निषिद्ध कर्म करने से विकर्म हो जाते है क्योंकि भाव के बदलने से कर्म का स्वरूप बदल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सपना दीदी
प्रश्न: तेरहवें श्लोक के अनुसार वर्ण कर्म के अनुसार होना चाहिए या जन्म के अनुसार।
उत्तर : वर्ण कर्मानुसार ही बनाए गए है। गुण और कर्मों के विभागानुसार ही उनका वर्ण निर्धारित होते हैं। उदाहरण स्वरूप एक ही घर में भिन्न-भिन्न कार्यो में रत व्यक्ति भिन्न वर्ण की भूमिका का निर्वहन करते हैं। कोई विद्या प्रदान कर ब्राह्मण का कार्य, तो कोई सेना में सेवा देकर क्षत्रिय का, कोई व्यापार में वैश्य का तो कोई सेवा कार्य में रह कर शूद्र का।

ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||